मन्नू भंडारी : कहानीकार का स्वरूप और सामाजिक सरोकारों का जोड़ घटाव

('नमक', 'स्त्री-सुबोधिनी', 'अकेली' और 'त्रिशंकु' कहानियों के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मीनाक्षी सिंह

साठोत्तरी महिला कथाकारों में अपनी विशिष्ट शैली, साधारण कथानक पर विशिष्ट अभिव्यक्ति एवं समाज के विभिन्न वर्गों के भाव-अनुभावों की विशिष्ट परख, सूक्ष्म चित्रण, विषयों की विविधता तथा वर्गों की जटिलता और साथ ही अपने व्यक्तित्व तथा अस्तित्व की शिराओं को पकड़ने की ऊहापोह, स्त्री-पुरुष संबंधों के विविध पक्ष, प्रेम की प्रवाहमान ऊष्मा के साथ ही ऊबाऊपन और रिश्तों तथा संबंधों को लगातार ढोते रहने की थकन और इन समस्त विशिष्टताओं के साथ लिपटी-सिपटी उनकी अपनी समय-सापेक्ष पारदर्शिता - जो उन्हें विशिष्ट तो बनाती ही है - स्त्री कथाकारों में उनकी एक खास पहचान भी अंकित करती है।

मन्नू भंडारी की सबसे बड़ी विशेषता है उनका सहज कथा-विन्यास और शिल्प का अद्‌भुत संयोजन एक किशोरी के मन की विविध दशाओं और दो-दो पीढ़ियों के आपसी भेद तक को वे विविध कोणों से पेश करती हैं और वह भी इतनी सहजता किंतु विशिष्टता के साथ कि पाठक हतप्रभ रह जाता है। कहते हैं कि टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचना बहुत आसान है किंतु सीधी लकीर खींच देना उतना ही कठिन। मन्नू भंडारी की कहानियां वही सीधी लकीरें हैं जिन्हें मन्नू भंडारी की सधी हुई तथा विशिष्ट शिल्प-अभिव्यक्ति द्वारा ही साधा जा सकता था। कहानियों का फलक देखने-सुनने में अतिसरल और साधारण किंतु उसकी अभिव्यक्ति इतनी विशिष्ट, संगठित और संश्लिष्ट मानो मन्नू भंडारी अपनी कथाओं के शब्द कागज पर उतारने के बाद भी एक-एक शब्द को उठा-उठाकर तराशती हैं, पॉलिश करती हैं, चमकाती हैं और फिर उन्हें कथा फ्रेम में फिक्स कर देती हैं।

साधारण दिख सकना बड़ी ही असाधारण चीज है। यही बात उनकी कहानियों को देखने से पता चलता है। अपनी 'स्त्री-सुबोधिनी', 'नमक', 'अकेली' और 'त्रिशंकु' नामक प्रतिनिधि तथा बहुचर्चित कहानियों में मन्नू भंडारी की लगभग हर विशिष्टता के तंतु मिल जाते हैं। उनकी स्पष्टता, उनका शिल्प एवं कला-कौशल, उनकी कथा-वाचन की कला तथा पात्र एवं पाठक दोनों की आत्मा में पैठकर कहानी को देखने-समझने की उनकी सूक्ष्म विशेष परख। उनकी कहानियों को पढ़ते वक्त कहानी का भाव बिल्कुल हमारे हृदय में विद्ध हो जाता है, पोर-पोर मानो शब्द खुद-ब-खुद बोलने लगते हैं, समान घटनाएं मानो कथा के साथ घर-परिवार, आस-पड़ोस से भी साथ-साथ झांकने लगती हैं।

उनकी कहानियां एक साथ लेखकीय सरोकार, पात्रों के चरित्र, कथन और स्वयं पाठक के अस्तित्व से एकाकार कर देती हैं। यही कारण है कि कथा-पाठन का समय वह विस्मृति का क्षण होता है जब कथा मन में जीवंत हो उठती है। इमेज मस्तिष्क पर छपता-सा जाता है, पाठक हर चीज भूलकर कथा में डूब-सा जाता है फिर भी वह समाज में होने और

अवचेतन में समाज से सरोकार टूटने नहीं देता। कहानी पढ़ते-पढ़ते ही पाठक रचना कौशल, विशिष्ट अभिव्यक्ति और वाक्य तथा शब्द के चयन पर हतप्रभ भी होता चलता है।

शब्द मानो कथा फलक पर अंकित होते चले जाते हैं। विस्तृत प्लेटफार्म पर शब्द बिछते चले जाते हैं और कथा निर्मित होती जाती है। बड़ी स्वाभाविक गति से, अत्यंत सहजता से और यही विशिष्ट सहजता तथा सहज विशिष्टता उनकी कथा शैली तथा कथ्य की खास विशेषता है जो उन्हें लाखों की भीड़ में एक खास पहचान देती है, विशिष्ट बनाती है।

एक अनाज की बोरी के बदले में एक इंसान और तब भी एहसान इतना कि पीढ़ी दर पीढ़ी उनके चरणों में मौत की तरह बिछते ही रहे, बिना अवाज के, बिना दर्द के। पूरा का पूरा गांव ठाकुर की हवेली के आगे कुछ न सोच सकता है, न समझ सकता है और विडंबना इससे भी बड़ी और ताज्जुब यह है कि गांववालों पर पीढ़ियों से एक कहानी के माध्यम से गुलामी थोपी जा रही है, उनकी आंखों पर अज्ञानता का पर्दा डाल दिया गया है। जिसकी ओट से उन्हें यह दिखता ही नहीं कि अब वह जमाना लद गया जब ठाकुर जी सचमुच के ठाकुर थे। वास्तव में समाज का शोषण करने वाले वे जोंक सदृश हैं जो खून भी चूसते रहते हैं, लगातार और पोरों-शिराओं में घुसकर तिल-तिल नोच-फाड़ भी करते रहते हैं। कैसी विडंबना है कि अंधभक्ति की आब इतनी तेज है, भक्ति का भुलावा इतना गाढ़ा है कि लोग गांव की सीमा के बाहर सोचते तक नहीं कि कहीं ठाकुरों की अवज्ञा न हो जाए।

'नमक' कहानी पढ़ते वक्त महसूस होता रहता है मानो मन्नू भंडारी की कलम से शब्द झर रहे हैं और झरते हुए ही हम तत्काल उन्हें गढ़ते हुए ग्रहण करते चल रहे हैं। वे सोच रही हैं, उतार रही हैं, और हम पढ़ते चले जा रहे हैं। 'नमक' कहानी में उनकी कशिश दिखती है मानो यह कोशिश है उस वर्ग के प्रति जिन्हें उठाने, संभालने और खड़ा करने के लिए आज बड़े-बड़े नारे लगाए जा रहे हैं, साहित्यिक क्रांतियां की जा रही हैं।

मन्नू भंडारी 'स्त्री सुबोधिनी' का शुभारंभ करते हुए कहती हैं -- "प्यारी बहनो, न तो मैं कोई विचारक हूँ, न प्रचारक, न लेखक, न शिक्षक। मैं तो एक बड़ी मामूली-सी नौकरी पेशा घरेलू औरत हूँ, जो अपनी उम्र के बयालीस साल पार कर चुकी है। लेकिन इस उम्र तक आते-आते जिन स्थितियों से मैं गुजरी हूं, जैसा अहम अनुभव मैंने पाया ... चाहती हूं, बिना किसी लाग-लपेट के उसे आपके सामने रखूँ।"

ऐसा महसूस होता है मानो यही बिना लाग-लपेट के रखी हुई सहज अभिव्यक्ति ही उनकी हर कहानी के कथ्य की शुरुआत में अदृश रूप में छिपा हुआ है। और यही बिना लाग-लपेट की सहज अभिव्यक्ति ही उनकी खास विशेषता है।

मन्नू भंडारी एक ऐसी साहसी और स्पष्ट लेखिका हैं जिन्होंने सतही जिंदगी को देखा और समझा परंतु जब अभिव्यक्ति की बात आई तो उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के उस सतह की पर्त को उघाड़कर रख दिया और उसी पर्त के नीचे छुपी गंदगी, सीलन, घिनौनेपन, खुरदुरेपन का चित्रण किया।

समाज का हर इंसान आज अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ रहा है -- जिंदगी का संघर्ष कर रहा है, यहाँ तक कि अपने अस्तित्व और निजता की जीत की खातिर वह संबंध-विच्छेद करने से भी नहीं कतराता। जाहिर-सी बात है कि जब एक इंसान यह चाहता है कि उसकी भावनाओं की कद्र की जाए, उसके अस्तित्व की प्रासंगिकता को समझा जाए, तो वह प्राणी अत्यंत ही संवेदनशील है, बुद्धिजीवी है और अपने अहं के ऊपर कोई भी चोट बर्दाश्त या स्वीकार नहीं कर सकता, परंतु हमारे समाज की विडंबना यही है कि समाज के जब भी दो ऐसे संवेदनशील और बुद्धिजीवी अपने-अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं तो उन्हें तीसरे का अस्तित्व, उसकी कोमल भावनाएँ और उसके नन्हें से अस्तित्व की ही याद नहीं रहती। वह यह भूल जाता है कि जीवन भर वह अपने जिस स्वाभिमान और अहंकार की लड़ाई लड़ रहा है -- उसी का अपना बच्चा उनकी इस लड़ाई में थाली के बैंगन की तरह कभी इधर कभी उधर लुढ़कता हुआ चक्की के दो पाटों में जीवन भर पिसता रह जाता है और जहाँ माता-पिता तो लड़ाई में जीतकर खुद को पा लेते हैं परंतु एक कोमल, तबिना अनुभव का

नन्हा बच्चा उनके अपने अहं की वजह से जीवन भर के लिए हार जाता है। दो लोगों के स्नेह के बीच में फँसे बच्चे के इसी मनोविज्ञान पर, उसकी कोमल भावनाओं पर जहां एक तरफ मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास 'आपका बंटी' में बड़े विस्तार से लेखनी चलाई है, वहीं अपनी कहानी 'मजबूरी' में वे इसकी एक झलक दिखा जाती हैं।

मन्नू भंडारी की विशेषता है कि वे भावनाओं और शब्दों को अपने लेखन में 'स्किप' नहीं करतीं और लंबी-लंबी छलांगें नहीं भरतीं बल्कि अपने वर्णन में प्रत्येक शब्द और प्रत्येक भाव को पकड़ती हुई उन पर अपनी कलम रखती हुई चलती हैं। ऐसे में उनका वर्णन कहीं भी बिखरा हुआ या बहुत अधिक विस्तृत नहीं प्रतीत होता बल्कि उनका एक छोटा-सा चित्र भी अत्यंत स्पष्ट, साफ-सुथरा और संक्षिप्त-सा प्रतीत होता है। वे वर्ण्य विषय-वस्तु के साथ उससे जुड़े हर कोण पर साधिकार बातें करती हुई अत्यंत साधारण लगने वाला दृश्य प्रस्तुत करती हैं -- अत्यंत ही सादे रीति से, परंतु उनकी यह सादा रीति ही वास्तव में उनके लेखन की विशिष्टता बन जाती है और उन्हें विशिष्ट बना देती है। उनकी कहानियों से उद्धरण लेना बहुत कठिन है क्योंकि उनकी पूरी कहानी ही एक खूबसूरत उद्धरण लगती है जिसमें से शब्द और वाक्य तोड़ना लगभग नामुमकिन-सा लगता है। उनके लेखन से प्रतीत होता है मानो उनके मन में कोई दुविधा नहीं है। वे बड़े बेलाग तरीके से अपनी बात रखती हैं।

''मन्नू जी की कहानियाँ भारतीय आम जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संक्रमणों के बीच से अपना उपजीव्य लेती हैं और इस तरह वे उन सच्चाइयों के भीतर काफी गहरी पैठ बनाती हैं जो उस समय साहित्य में अनकहे थे लेकिन जिनका आख्यान बेहद मार्मिक था। यह दुनिया स्त्रियों की थी जो चाहे घर के भीतर हों चाहे घर के बाहर, उनकी भूमिका एक श्रमजीवी की, कभी न खत्म होने वाली भूमिका थी। बेशक वे बूढ़ी होने के बाद अप्रासंगिक होती चली गईं और अगर युवा हैं तो अपनी साधारण इच्छाओं का भी दमन करती हुई जीवन जी रही हैं। स्त्रियों की यह दुनिया जो सामूहिकता और अपने भीतर मौजूद सामाजिकता के कारण दुखों को भी सुख में बदल देने की कूबत से संपन्न है, कहीं न कहीं सुखों और संपन्नताओं के बीच भी एकाकी और उदास मिल जाती है जैसे सारी सुविधाओं के बीच भी मानसिक बनवास लिए हुए हों। मन्नू जी की कहानियां ऐसे स्त्री-चरित्रों से हिंदी साहित्य को संपन्न बनाती हैं।'' सुधा अरोड़ा जी की कही ये पंक्तियां मन्नू भंडारी की कहानियों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं जहाँ कुछ खास बिंदुओं पर लक्ष्य करके मन्नू भंडारी की कहानियों की विषय वस्तु को गहराई से समझा जा सकता है।

मन्नू भंडारी आम लोगों के आम जीवन से अपने मुद्दे उठाती हैं। आम जीवन अर्थात मध्यवर्ग, निम्न वर्ग, निम्न मध्यवर्ग इत्यादि। मन्नू भंडारी की कहानी 'मैं हार गई' इन आम लोगों के जीवन पर बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य प्रस्तुत करती है। इंसान एक ऐसा प्राणी है जिसे बनने में और बनाने में सिर्फ उसके अपने गुण या अपनी कुदरती प्रतिभाएं ही कारक नहीं होतीं। बल्कि सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ बहुधा उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करती रहती हैं। एक मासूम बच्चा, निर्दोष किशोर एक पवित्र आत्मा जिसने शुरू से ही कभी चोरी नहीं की, कभी मिथ्या कथा का प्रयोग नहीं किया, कभी किसी का बेजा फायदा उठाने की कोशिश नहीं की पर समाज, समाज की विषम आर्थिक परिस्थितियाँ, गरीबी की मार, दुरवस्थाएँ और नियति की गाथा उसे मजबूर कर देती हैं कि वह गलत रास्ते पर चले। अर्थात कोई इंसान अपने बच्चे में हर मुमकिन अच्छा संस्कार प्रत्यारोपित कर सकता है परंतु यह पूर्णत: उस बच्चे की स्थितियों पर ही निर्भर करता है कि उसे भविष्य में किस मार्ग पर चलना है। यही कारण है कि मन्नू भंडारी का भावी नेता, जिसमें मन्नू भंडारी ने अवश्यंभावी सारे गुण भर दिए हैं तथापि गरीबी की मार उनकी लेखनी को भी डिगा देती है और उनकी कल्पना में स्थित आदर्शवादी नेता - जो उनके आदर्श ग्राम के सपने को साकार करेगा - विचलित हो जाता है। यह विचलन पूर्णत: ऊपरी है क्योंकि वह नेता भी नहीं चाहता ऐसा। आदर्श एक ऐसी स्थिति है जो कभी यथार्थ नहीं बन सकता और यथार्थ एक ऐसा परिवेश है जो कभी आदर्श नहीं बन सकता। क्या कारण है कि सभी प्रतिभाओं से लैस लेखिका का आदर्श नेता जीवन के यथार्थ मोर्चों पर फेल हो जाता

है। निम्न मध्यवर्ग का यह नेता हमारे मन की आशाओं और उमंगों की तरह ही पनपता-उमगता है। आशा से अधिक शिक्षा ग्रहण करता है, क्रांति के लिए मचलता भी है और संकट काल में जान बाजी पर लगा देने से भी नहीं हिचकता।

परंतु, 'टिपिकल भारतीय विपन्नता उसे निरस्त्र कर देती है। इतनी प्रतिभाओं से लैस छात्र अपनी पढ़ाई इसलिए पूरी नहीं कर पाता क्योंकि बिना दवा-इलाज के उसके पिता गरीबी की घुटन और विवशता की झोंपड़ी में दम तोड़ देते हैं। उसकी जमीन जो उसका सहारा बन सकती है -- अपने ही देशी दुश्मनों की बलि चढ़ जाती है। हमारे देश की युवा पीढ़ी का वह स्वर्णिम समय जब वह सर्वाधिक ऊर्जा से भरा हुआ होता है -- जब वह क्रांति की आग में जलता है -- जब वह विद्रोह की अग्नि में पगा होता है -- जब हमारे युवाओं की तरफ देश और जनता बड़ी उम्मीदों से ताकती है, उनसे आस लगाए रहती है -- उसी स्वर्णिम समय में उसी वय में लेखिका उससे कहती है -- "अब समय आ गया है। तुम घर-बार और रोटी की चिंता छोड़कर देश-सेवा के कार्य में लग जाओ। तुम्हें देश का नव-निर्माण करना है। शोषितों की आवाज को बुलंद करके देश में वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है। तुम सबकुछ बड़ी सफलता पूर्वक कर सकोगे, क्योंकि मैंने तुममें सब आवश्यक गुण भर दिए हैं।"

पर उसी वक्त यह युवा वर्ग अपनी तमाम जिम्मेदारियों को कंधों पर ढोता हुआ, कर्त्तव्य और धर्म के दोराहे पर खड़ा नौकरी, विपन्नता, इच्छाएं, अरमान और देश की व्यवस्था से पनपी अराजकता की चक्की में पिसता गुमराह होकर इधर से उधर भटकता रह जाता है। यह समझ और समझदारी से परे हो जाता है कि 'क्या करना चाहिए' बल्कि यह सर्वोपरि हो जाता है कि 'क्या करना है' और इसी कोशिश में वह एक बार अपनी निर्मात्री से नौकरी भी मांगता है, मोहलत मांगता है ताकि आर्थिक रूप से अपनी माता, बहन, बुआ के जीवन निर्वाह का जुगाड़ लगाकर बाकी का अपना सारा समय, अपनी सारी ऊर्जा देश सेवा में लगा सके। पर कलम की धनी मन्नू भंडारी यहाँ यह उकेरना भी नहीं भूलतीं कि देश में युवा मेधा तथा प्रतिभा से अकूत भरे पड़े हैं फिर भी उन्हें एक साधारण-सी सरकारी नौकरी मिलना दुर्लभ ही है क्योंकि -- "पिताजी की उदार नीति के कारण कोई जगह खाली भी तो रहने पाए! देखा तो सब जगह भरी हुई थी। कहीं मेरे चचेरे भाई विराजमान थे, तो कहीं फुफेरे। मतलब यह है कि मैं उसके लिए कोई प्रबंध न कर सकी। उसका मुँह तो चीर दिया, पर उसे भरने का प्रबंध न कर सकी।"

क्या वाकई यही देश की स्थिति नहीं है। युवाओं में इतनी ऊर्जा, इतनी प्रतिभा, अकूत सामर्थ्य, अमिट क्षमता भरी पड़ी है, परंतु जब वे अपनी ऊर्जा को सकारात्मक रूप से व्यय करने के लिए अपनी देश की सरकार का मुँह ताकते हैं तो उन्हें मुँहकी ही खानी पड़ती है। भाई-भतीजावाद की नीति अपनानेवाली सरकार उन्हें गैर समझ मक्खी की तरह बाहर फेंक देती है। हर ओर से हारकर इन प्रतिभाओं को अपनी असीमित ऊर्जा का उपयोग नकारात्मक तरीके से व्यय करना पड़ता है -- विद्रोह, क्रांति अपने ही देश में जहाँ तरक्की और विकास की असीम संभावनाएँ मुँह बाए खड़ी हैं, जहाँ प्रतिभाओं का दोहन अपेक्षित है -- वहाँ हमारी क्षमता, हमारी ऊर्जा कॉलेज, यूनिवर्सिटी के बाहर नारे लगाने में और चाय बाड़ी के बाहर कल्पना करने में व्यतीत होती है। हारकर हमारा यह महान भविष्य मजदूरी करने पर आमादा होता है। मन्नू भंडारी मानो व्यवस्था की विडंबना पर, समस्या की नब्ज पर सीधे ही ऊँगली रख देती हैं -- "जैसे-जैसे वह सिर पर ईंटें उठाता, उसके अरमान नीचे को धसकते जाते।" देश की गरीबी और उससे भी ज्यादा विषमता आज युवा वर्ग को, उनकी क्षमता को तोड़ रही है। इन व्यय होती ऊर्जाओं का लाभ उठाने वाले टुटपुंजिए मौकापरस्त नेता अपनी करनी से बाज नहीं आते जिसकी वजह से कई युवा इधर-उधर भटकने से भला यह समझते हैं कि कहीं लग जाएं और इसी कोशिश में कई बार असामाजिक तत्वों के लिए ये कंधा भी साबित होते हैं।

'त्रिशंकु' में तनु की मम्मी का व्यवहार वह सत्याग्रह है, वह अहिंसक आंदोलन है जो प्यार, मनुहार, आग्रह और छुपे हुए क्रोध तथा विद्रोह के माध्यम से आखिर में सामने वाले को अपनी ही लीक पर खींचकर लाना चाहता है, परंतु उसमें

यह ताकत नहीं होती कि वह खुद सामने वाले की लीक पर साथ चल सके। वह सत्याग्रह झुकाने के लिए करता है, खुद झुकने के लिए नहीं। उसका उसी रौ में बहना जान-बूझकर अपनाया गया एक हथियार ही होता है, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि क्रोध जिसे परासत नहीं कर सकता, यह सत्याग्रह उसे बड़ी आसानी से परासत कर सकता है। आखिर अपने पिता के क्रोध को तो तनु की ममी ने भी बड़ी आसानी से जीत लिया था परंतु उसी स्तर पर तनु अपनी मां को परास्त नहीं कर पाती क्योंकि वहाँ क्रोध नहीं, हिंसा नहीं, अहिंसा का लेप और सहानुभूति का मरहम है और जिसे परास्त करना असंभव है बल्कि परास्त करने की सोच सकना भी असंभव है। यही कारण है कि तनु की मम्मी का अपने पिता से मोर्चा लेना और उसे जीतना जितना सरल था, तनु के लिए अपनी माँ से मोर्चा ले सकना उतना ही कठिन। वह बार-बार अपनी माँ से निकलने वाले नाना से मोर्चा लेती है पर अपनी सत्याग्रही माँ के सामने बिदककर बिल में छुप जाती है।

तनु की माँ और तनु की पीढ़ी समानांतर चलने वाली वे दो पीढ़ियाँ हैं जो साथ चल सकती हैं पर साथ मिलकर नहीं चल सकतीं। जो एक साथ समानांतर चल सकती हैं पर एक दूसरे की तरफ नहीं चल सकतीं। यह वक्त और पीढ़ियों का अंतर नहीं, यही वह साम्य है, एकरूपता है जो पीढ़ियों के भेद को शून्य कर देता है। यही वह स्तर है जहाँ पहुँचकर आजाद खयाल, स्वतंत्रता प्रेमी और उनमुक्त जन भी संस्कारों से ग्रस्त रूढ़िवादी नजर आने लगते हैं क्योंकि सबको खुद पर विश्वास होता है, अपने फैसलों पर यकीन रहता है पर जो अपनी रूढ़िवादिता और संस्कारों के कारण अपने अबोध बच्चों पर कभी विश्वास नहीं कर पाते, उनके हर फैसले को नापसंद करने के लिए मजबूर रहते हैं, वे आजादी मांग सकने और छीन सकने के लिए जितने ज्यादा क्रांतिकारी होते हैं, देने के वक्त उतने ही तानाशाह बन जाते हैं। हर नई पीढ़ी पर पुरानी पीढ़ी का अविश्वास वह अंतर है जो इनके बीच एक गहरी खाई उत्पन्न कर देता है -- भेद पैदा कर देता है। वे बार-बार आगे बढ़कर उनका हाथ थामना चाहते हैं पर उनकी अपनी रूढ़ियाँ और संस्कार उन्हें उतने ही दुगुने जोर से पीछे की ओर खींचते भी हैं।

यहां यह बात बिल्कुल साबित हो जाती है कि तनु के नाना भी कोई शक नहीं कि अपने समय में आजाद ख्याल के रहे होंगे, वे भी अपनी जवानी में क्रांतिकारी विचारों के, उनमुक्तता प्रेमी और स्वतंत्रता की चाह को पूरा करने के लिए रूढ़ियों तथा गुलामी की प्रत्येक बेड़ी को तोड़ सकने के लिए प्रयासरत रहे होंगे।

जिस उनमुक्त हवा में सांस लेने की इच्छा वे खुद करते हैं उसी उनमुक्तता से सारे संसार को सांस लेते देखना चाहते हैं, पर जैसे ही बात अपनी अगली पीढ़ी को स्वतंत्रता देने की आती है, सारे हौसले पस्त पड़ जाते हैं। उनमुक्तता भूल-गलती जैसा लगने लगता है और स्वतंत्रता की मांग उम्र के जोश में की जाने वाली गलती।

एक कहानीकार की सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि पाठक या आलोचक जब भी उसकी किसी रचना को या रचना की घटनाओं को पढ़ते-देखते हैं तो सबसे पहला सवाल यह पूछते हैं या सोचते हैं कि यह यथार्थ है या कल्पना और अगर यथार्थ है तो उसे लेखक के निजी जीवन से कई बार जोड़कर देखा जाता है, तोड़-मरोड़ कर भी पेश किया जाता है। मेरा अपना विचार है या अनुभव है कि रचनाकार यदि एक यथार्थवादी लेखक है तो उसकी रचना कभी भी पूर्णत: काल्पनिक नहीं हो सकती। होगी भी कैसे? उनकी कहानियों में यथार्थ पर प्रश्न करने पर मन्नू भंडारी खुद कहती हैं -- "कोई भी कहानीकार, मैं ही नहीं कोई भी, हमारे पीरियड के सभी कहानीकार जिन लोगों ने लिखा -- तो कहीं न कहीं काल्पनिक चीजें तो होती हैं उसमें, जीवन का यथार्थ भी होता है हर व्यक्ति कहीं न कहीं अपने जीवन की कोई न कोई घटना उसके साथ जोड़ता है।"

मन्नू भंडारी जी की जिंदगी में उनके समानांतर कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश थे और वह उनसे दूर, उनके साहित्यकारों से अनभिज्ञ या कटी हुई नहीं थीं बल्कि लगातार वे आपस में जुडे हुए थे इतना कि मन्नू भंडारी बताती हैं

कि उनका उपन्यास 'आपका बंटी' स्वयं मोहन राकेश के ही असफल वैवाहिक जीवन की कहानी है, उनकी अपनी पहली पत्नी के उन्हें छोड़कर चले जाने और दूसरा विवाह करने की कहानी है।

फिर यह कैसे संभव है कि उनकी कहानी कल्पना की उड़ान पर खड़ी होती। बल्कि मेरा तो मानना है कि यथार्थवादी कहानियाँ कभी काल्पनिक भित्ति पर खड़ी हो ही नहीं सकतीं। कल्पना से इस महल की खिड़की, दरवाजों का निर्माण या सजावट जितना करना चाहो, कर सकते हो, किया जा सकता है परंतु पूरी कथा कल्पना पर ही आधारित नहीं हो सकती और अगर की जाती है तो वह कभी यथार्थवादी कहानी नहीं हो सकती।

यह जरूर संभव है कि कहानी का एक अंश ही नजर में पड़ा हो, कहीं समाज में मिला हो पर कुछ न कुछ, कोई न कोई सिरा तो कहीं न कहीं जुड़ा रहता ही है फिर पूरी की पूरी कथा रचनाकार अपनी मानसिक पृष्ठभूमि में अनुमान करके ही क्यों न सृजित कर ले।

अपने एक साक्षात्कार में मन्नू भंडारी अपनी दो बहुचर्चित कहानियों 'दो कलाकार' और 'अकेली' के यथार्थ का दिग्दर्शन कराती हुई कहती हैं -- "अब ये 'दो कलाकार' जब मैं एम. ए. कर रही थी तो मेरे बगल वाले कमरे में दो लड़कियाँ और रहती थी और मैं बगल वाले कमरे में रहती थी'. 'मैं गई थी अपनी पढ़ाई करने एम. ए. की और मेरा सारा ध्यान उन दो लड़कियों की बातों पर रहता था '.' एक उनमें चित्रकार थी और एक समाज सुधारक थी और दोनों में इतनी बहस होती थी, एक कहती कि चित्र बना-बना के क्या होगा और दूसरी कहती थी कि तू गरीब बच्चों को पढ़ा लेगी तो इससे क्या समाज सुधर जाएगा '.' ऐसी बहसें मैं सुना करती थी '.' उस समय कभी दिमाग में भी नहीं आया था कि मैं उन पर कहानी लिखूंगी '.' बाद में जब लिखना शुरू किया ये लड़कियाँ याद आ गईं '.' तब तो मैं लिखती भी नहीं थी '.' मैं खुद एम.ए. कर रही थी '.' बाद में मुझे लगा कि ये भी एक 'थीम' है और मैंने उस पर कहानी लिखी ...'अकेली' हम लोग अजमेर में रहते थे '.' तब मैं पढ़ती थी '.' स्कूल के दिनों की बात है, हमारा बहुत बड़ा आंगन था '.' उसके पीछे कोठरी थी जिसमें एक बूढ़ी महिला रहती थी और परिवार के लोग ऊपर रहते थे '.' हमारी मां उन्हें बहुत सम्मान देती थीं और तो सब ठीक था, मगर इधर से उठा ली चीज, थोड़ी उधर से उठा ली चीज '.' इसकी उनको थोड़ी-सी आदत थी '.' इसी को बेस बनाकर 'अकेली' मैंने कहानी लिखी थी '.' एक बार उनके घर चोरी हो गई तो बहुत-सी चीजें निकलीं '.' ऐसी-ऐसी चीजें जिनसे उनका कोई लेना-देना नहीं '.' पिताजी के ऑफिस से कुछ उठा लाई, यह एक आदत थी उनकी ...क्या था कि उसके पति थे '.' ऐसा नहीं कि विधवा थी '.' वो पति थे पर साल में एक बार आते थे '.' बस ऐसे ही महीनेभर के लिए आते थे, रोक-टोक भी बहुत करते थे '.' और वह सबके घरों में काम करके अपना अकेलापन दूर करती थी '.' ये मेरा विचार था कि अकेली औरत कैसे अपना अकेलापन दूर करे तो वो कुछ भी घरों में कोई काम हो '.' कोई बुलाए न बुलाए वो जाकर काम करने लगती थी '.' तो ऐसे अपना अकेलापन दूर करती थी वो '.' "

अपनी 'अकेली' कहानी में मन्नू भंडारी ने एक औरत के अकेलेपन का और उस अकेलेपन से उपजी छटपटाहट का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। ऐसा क्या इसलिए नहीं है कि 'विचारों का सन्नाटा' और 'हृदय की वीरानता' से वे सदैव स्वयं भी त्रस्त रही हैं। मन्नू भंडारी जो स्वयं बहुत दिनों तक अकेली रही हैं और बड़े जीवट के साथ अकेलेपन का और उससे उपजी सारी समस्याओं का सामना किया है, अकेलेपन के विषय में कहती हैं कि -- "बहुतों के बीच में रहकर भी हम अकेले रहते हैं। कई बार बहुत लोग यानी परिवार के बीच में रहकर भी हम बहुत अकेले होते हैं। हमारे विचार, हमारी सोच, सब कुछ इतना अलग होता है कि हम अकेले हो जाते हैं।" मन्नू भंडारी का यह अकेलापन और उससे उपजा दर्द उनके 'कहाँ कुछ छूट गया है' नामक 'हंस' में छापे गए उनके डायरी के कुछ अंशों में बड़ी ही गंभीरता से उभरकर सामने आता है जहाँ वह अपने अकेलेपन और विचारों की शून्यता तथा शारीरिक, मानसिक परेशानियों से जूझती हुई अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम एक डायरी को बनाती हुई महाकालेश्वर को संबोधित कर उनसे संवाद-सेतु निर्मित करती हैं। इस डायरी में

उनकी छटपटाहट, उनकी बेचैनी और शारीरिक रोगों के कष्ट से उपजा उनका दर्द दिखता है जहाँ वे लगातार हताशा और बेचारगी से जूझती हुई एक तरफ लगातार संघर्ष करती दिखती हैं वहीं दूसरी तरफ अपनी कशमकश और उलझनों का महाकालेश्वर से संवाद के माध्यम से खुद में ही उत्तर ढूँढ़ने का प्रयत्न करती हैं। यह उनकी जीजिविषा का प्रतीक भी है जो उनके अदम्य जीवट का, जुझारू प्रवृत्ति का तथा दुर्धर्षता का परिचायक है।

यह भी सच है कि जहाँ एक तरफ मन्नू भंडारी स्थितियों से जूझती हैं वहीं अपनी स्थिति का विश्लेषण-संश्लेषण करने की क्षमता भी उनमें भरपूर है -- वे अपनी मानसिक शारीरिक परेशानियों के कारणों को बड़ी ही स्पष्टता से समझती भी हैं, रेखांकित भी करती हैं और डायरी में उकेरती भी हैं -- राजेंद्र यादव से अपने संबंधों की खींचातानी को इसी डायरी में अभिव्यक्ति देती हुई मानो महाकालेश्वर के समक्ष वे अपने टूटे हृदय और गीले भावों की गवाही देते हुए कहती हैं –

"हाँ तो कल मैंने तुम्हें बताया था न कि क्यों हो गई है मेरी ऐसी स्थिति इसका मेरे पास अपना एक विश्लेषण है. इन सबकी नींव में मेरे और राजेंद्र के संबंध ही तो हैं. जिस व्यक्ति से मैंने सबसे ज्यादा मान्यता, अपनत्व और स्नेह चाहा वहीं से मिली उपेक्षा...अपमान की सीमाओं को स्पर्श करने वाली उपेक्षा. बाहर से देखने वाले तो कभी अनुमान नहीं लगा सकेंगे कि इनके व्यवहार में कहीं कोई कमी है, ... लेकिन मैं जानती हूँ, जानती ही नहीं हूँ... मैंने इतने वर्षों तक उसे भोगा है...और इसी में धीरे-धीरे मैं खत्म होती चली गई हूँ. भावनात्मक रूप से राजेंद्र मुझसे कभी जुड़े ही नहीं और मैं इनसे इतने गहरे से जुड़ी हुई थी कि ... इसमें संदेह नहीं कि तुमने इस पक्ष की क्षतिपूर्ति के लिए बहुत कुछ दिया भी है. मुझे यश, बाहर वालों का सम्मान, पैसा (आज तो कह ही सकती हूँ), पर मैं बस वही चाहती रही जो कभी मिल नहीं सकता था... लेकिन मेरे मन का तार भी अब तो झटके से टूट गया और उसके बाद तो अब मैं राजेंद्र के साथ रहना भी नहीं चाहती. यहाँ आने का अवसर मिल गया मुझे, मनचाही मुराद मिल गई."

मन्नू भंडारी की एक खास विशेषता यही है कि रिश्तों की गरिमा और आत्मसम्मान दोनों के बीच संतुलन रखती हुई आत्म-निवेदन भी करती हैं तो महाकालेश्वर के समीप वे किसी पर दोषारोपण नहीं करतीं बल्कि निष्पक्ष भाव से पक्ष और विपक्ष को प्रस्तुत करती हैं -- अपनी गवाही भी देती हैं और विपक्ष के तर्कों को भी पेश करती हैं, परंतु सच्चे मन से स्वीकारती हुई अपनी स्थिति को स्वीकार भी करती हैं। अपने मन की अदालत में वे तर्क, गवाह, अपराधी सभी को पेश करती हैं किंतु हार-जीत से परे वे बस निष्पक्ष भाव से अपने जीवन का दिग्दर्शन ही करती हैं बिल्कुल उसी तरह जैसे वे अपनी कहानियों में बड़े ही स्पष्ट और निश्छल तरीके से पात्रों के क्रिया-कलापों को देखती चलती हैं और उकेरती चलती हैं। उनकी कहानियों में यथार्थ है, कल्पना है, अनुमान है, अनुभव है, अनुभूति है और अभिव्यक्ति है परंतु इन सबसे जो बड़ी चीज है वह यह कि वे अपने परिवेश के प्रति सजग हैं, वे जानती हैं कि उनके अगल-बगल में क्या हो रहा है; कैसे हो रहा है और उस यथार्थ को कहानी में ढालने की अद्‌भुत कला है उनके पास।

मन्नू भंडारी बेहद संवेदनशील, भावुक हैं, निजी जिंदगी में भी और रचनाकार के तौर पर भी परंतु उनकी यही भावुकता और कोमलता, जिसे अक्सर मानवीय कमजोरी मान लिया जाता है -- वास्तव में उनकी ताकत है -- रचनाशीलता का अनवरत श्रोत है, चूंकि पत्थर में सृजन नहीं होता -- कोंपलें नहीं फूटतीं -- यह तो पानी की तरलता में, मिट्टी की सरलता में होता है। पत्थर जो सबको चोट देता रहता है, जीवन भर पत्थर की ही तरह रास्ते पर पड़ा रह जाता है, किंतु मिट्टी जो पैरों तले रौंदी जाती है – अत्यंत कोमल अपना हृदय फाड़ कर वही कुछ पैदा भी कर सकती है।

संपर्क :
डी – 286 ट्रेंचिंग ग्राउंड रोड
गार्डेनरिच, कोलकाता – 700024
minihope123@gmail.com